॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

८२

महाकवि श्रीमदश्वघोषविरचितं

बुद्धचरितम्

'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेतम्

(द्वितीयो भागः)

संस्कृत पद्य-रचनाकार तथा व्याख्याकार—

व्याकरणाचार्य-काव्यतीर्थ—

महन्त श्री रामचन्द्रदास शास्त्री

अध्यक्ष, संस्कृत विश्व-परिषद्-शाखा, जबलपुर (मध्यप्रदेश)

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-२२१००१

भेरीं नादयितुं धर्म्यां काशीं गच्छामि साम्प्रतम् ।
न सुखाय न यशसे चार्तत्राणाय केवलम् ।।

(१५-१०

शास्त्री जी ने अधिकतर अनुष्टप् छन्दों का ही प्रयोग किया है । कि सर्ग के अन्त में संस्कृत काव्य-पद्धति के अनुसार वसन्ततिलका आदि छन्दों भी प्रयोग किया है, जैसे—

अहिनरसुरलोके धर्मचक्रं यदेवं,
त्रिभुवनसुखशान्त्यै चाशु शुभ्रं चचाल ।
भुवि दिशि दिवि देवा भूतसङ्घाश्च सर्वे,
सह कुसुमनिपातैर्नृत्यगीतश्च चक्रुः ।।

(१५-६७

शिष्यों को दीक्षा प्रदान करते समय बुद्ध कहते हैं—'यह जगत् वित रूपी ईंधन से और मोह रूपी धुआँ से घिरा हुआ है तथा रोष रूपी अग्नि परवश होकर जल रहा है' :—

वितर्केन्धनजातेन मोहधूमावृतेन च ।
दोषाग्निना त्विदं विश्वं विवशं परिदह्यते ।।

(१६-३८

महाशिष्यों की प्रव्रज्या ग्रहण करके शिष्य जिस स्थित को प्राप्त हुए उसका वर्णन गीता से मिलता-जुलता है । वह शत्रु और मित्र दोनों में स समान और सब प्राणियों के हित में निरत होकर तथा मानस रोगों से मु होकर आत्माराम हो गया—

समः शत्रौ च मित्रे च सर्वभूतहिते रतः ।
मुक्तमानसरोगोऽसावात्मारामो बभूव ह ।।

(१७-३६

अनाथपिण्डद को दीक्षा देते समय बुद्ध कहते हैं—'मिथ्या दृष्टि और गुणों बद्ध होकर तत्त्व न जाननेवाला व्यक्ति नष्ट हो जाता है, किन्तु जितात्मा औ रजोगुण से मुक्त पुरुष निर्मल पद पाता है' :—

मिथ्यादृष्टिगुणैर्बद्धश्चातत्त्वज्ञो विनश्यति ।
जितात्मानो रजोमुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ।।

(१८-१७

जब बुद्ध भगवान् ने भिक्षुक के वेश में अपने पिता की नगरी में प्रवेश किया उस समय जो करुण दृश्य उपस्थित हुआ उसका वर्णन १९वें सर्ग में किया गया है। बुद्ध ने अपने पिता शुद्धोधन को समझाते हुये कहा कि मैं आपके भाव को जानता हूँ, आपके वात्सल्य को भी पहचानता हूँ; किन्तु अब आप पुत्रानन्द को छोड़कर धर्मानन्द को ग्रहण कीजिये :—

राजन् जानामि ते भावं पुत्रवत्सल मा शुचः ।
पुत्रानन्दं परित्यज्य धर्मानन्दः प्रगृह्यताम् ॥

(१९–१७)

श्रावस्ती में प्रवेश करने पर अनाथपिण्डक ने अपना जेतवन बिहार के लिये प्रदान कर दिया। उस समय राजा को बुद्ध ने उपदेश दिया—'मोह-रूपी समुद्र में, वासनारूपी लहरों के बीच जन्मरूपी जल में लोग डूब रहे हैं। वे वीर्य और सुमति रूपी पतवारों से नौका द्वारा तर सकते हैं'।

तमोऽब्धौ वासनावीचौ जन्माम्भसि निमज्जिताः ।
वीर्यसुमत्यरित्राभ्यां ज्ञाननावा तरन्ति ते ॥

(२०–५८)

इक्कीसवें सर्ग में वर्णित है कि किस प्रकार सभी श्रेणी के लोगों ने सामूहिक रूप से बौद्ध-धर्म की दीक्षा ग्रहण की। नगर और वनबासियों ने भी बौद्ध-धर्म स्वीकार किया :—

जङ्गाली नागरश्चैव क्रूरकर्मा च कालकः ।
कुम्भीरश्च तथैवैते बौद्धं धर्मं प्रजग्रहुः ॥

(२१–३३)

आम्रपाली का आत्मसमर्पण बुद्धचरित की अद्भुत घटना है। जब बुद्ध श्रावस्ती में निवास कर रहे थे, तब आम्रपाली ने उनसे भिक्षा ग्रहण करने की प्रार्थना की—'आप अपने लक्ष्य को प्राप्त कर चुके हैं और संसार-सागर को तर चुके हैं अतः मेरे धर्मलाभ के लिये मेरी भिक्षा सफल कीजिये' :—

लब्धलक्ष्यो हि देव त्वं सन्तीर्णभववारिधिः ।
धर्मलाभाय मे साधो मद्भिक्षां सफलां कुरु ॥

(२२–५३)

उन्होंने बुद्धशील का जो सुन्दर उपदेश दिया वह २३वें सर्ग में ग्रथित है।

चराचर विश्व का आधार जिस प्रकार वसुन्धरा है उसी प्रकार शील सब गुणों का आधार है :—

चराचरस्य विश्वस्य यथाधारो वसुन्धरा ।
निखिलानां गुणानाञ्च तथा शीलं शुभाश्रय: ॥

(२३–१८)

लिच्छवियों को भगवान् बुद्ध ने जो उपदेश दिया वह एकता और आपसी संगठन का सन्देश था । उसके अन्त में उन्होंने कहा कि मेरे इस ज्ञान रूपी दीपक से तुम्हारे अन्दर का अन्धकार उसी प्रकार नष्ट हो जायेगा जिस प्रकार दीपक से लोगों के घरों का अन्धकार नष्ट होता है :—

अनेन ज्ञानदीपेन नश्यत्यन्तस्तमो ननु ।
प्रदीपेन च लोकस्य यथा गेहगतं तम: ॥

(२४–२३)

वैशाली से प्रस्थान करने के वाद बुद्ध ने अपना परिभ्रमण जारी रखा और कुशीनगर की ओर प्रस्थान किया । रास्ते में चुन्द नामक शिष्य के यहाँ भोजन किया । कहते हैं कि उसने भोजन में विष मिला दिया था । उपवन में पहुँचकर बुद्ध ने आनन्द से कहा कि शाल के वृक्षों के बीच में मेरी शैय्या बिछाओ, मैं निर्वाण प्राप्त करना चाहता हूँ । उस समय शिष्यों की जो मनोदशा हुई उसका वर्णन २५वें सर्ग में किया गया है ।

अंतिम उपदेश को बुद्धचरित में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—आलस्य-रहित होकर तथा पराक्रम का आधार लेकर श्रेय का आचरण करो । हवा के बीच में स्थित दीपशिखा के समान जीवन चञ्चल है' :—

अतो निरालसो वीर्यमाधाय श्रेय आचार ।
प्रवातस्थस्य दीपस्य शिखावज्जीवनं चलम् ॥

(२५–८०)

अपनी अन्तिम शैय्या से भी भगवान् बुद्ध धर्म का उपदेश करते रहे । अन्त में सुभद्र नामक एक व्यक्ति दीक्षा लेने आया । आनन्द ने बुद्ध की अंतिम अवस्था देखकर रोकना चाहा किन्तु बुद्ध ने नहीं माना । उनके उपदेश को सुनकर सुभद्र ने सोचा कि गुरु की मृत्यु का दर्शन करना उचित नहीं, अत: उनके पहले मैं निर्वाण प्राप्त करूँगा । बुद्ध ने कहा कि यह मेरा अन्तिम शिष्य मुझसे भी बढ़कर निकला और फिर से आनन्द को उपदेश दिया । वह उपदेश २६ वें

सर्ग में ग्रथित है । यह सर्ग शायद सबसे लम्बा है । इसी में बुद्ध के महानिर्वाण का शोकजनक वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि जिस प्रकार बिना चन्द्रमा के आकाश प्रभाहीन हो जाता है, हिम के द्वारा कमल नष्ट हो जाता है तथा धन के बिना विद्या विफल हो जाती है, उसी प्रकार मुनि के बिना जगत् अनाथ हो गया ।

२७ वें सर्ग में बुद्ध एवं उनके उपदेशों की प्रशंसा की गई है । इनके अन्तिम अग्निसंस्कार का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जिसने संसार-समुद्र को सोख लिया और दोषरूपी महावन को जला डाला उसी की काया को अग्नि ने भस्मसात् कर दिया :—

भवाब्धि: शोषितो येन दग्धं दोषमहावनम् ।
तथापि तस्य गात्रं हि, वह्निना भस्मसात्कृतम् ॥

(२७–८२)

जिसने समग्र जीवन शान्ति का उपदेश दिया उनके निर्वाण के बाद उनकी अस्थियों के सम्बन्ध में राजाओं में संघर्ष होना एक विपरीत बात हुई । किन्तु बाद में सबने शान्त होकर उनका आपस में विभाजन कर लिया और अपने-अपने स्थानों पर स्तूपों का निर्माण किया । उनसे सारा देश प्रेरणा ग्रहण करता रहा । इस पर कवि की उक्ति चरितार्थ है । जिसने दीनों का उद्धार किया तथा धर्ममार्ग का शोधन किया, लोकहित में निरत उन बुद्ध का अर्चन कौन कृतघ्न न करेगा ?

दीना: समुद्धृता येन, मार्गो धर्मस्य शोधित: ।
कृतज्ञा: किन्न चार्चन्तु, बुद्धं लोकहिते रतम् ॥

(२८–७४)

कवि ने अपना उद्देश्य बतलाते हुए अन्त में कहा है :—'बुद्ध के प्रति अनुराग से उनके शास्त्र का अनुगमन कर लोकहित और शान्ति के लिये मैंने यह काव्य लिखा है, न कि अपनी काव्यकला प्रदर्शित करने के लिये' :—

बुद्धानुरागादनुगम्य तस्य,
शास्त्रं च लोकस्य हिताय शान्त्यै ।
काव्यं कृतं ज्ञापयितुं निजस्य,
कलां न काव्यस्य च कोविदत्वम् ॥

(२८–७८)

प्रश्न हो सकता है कि बुद्ध ने नई बात कौन सी कही ? पहले तो उन्हों शरीर को कष्ट पहुँचा कर सिद्धि प्राप्त करने को आदर्श न मानकर निर्वाण प्राप्ति को ही चरम लक्ष्य बतलाया। उन्होंने कहा–'जो लोग अपने प्रिय बन्धुओं को छोड़कर स्वर्ग के लिये प्रयत्न करते हैं, फिर-फिर दूसरे बन्धनों में पड़ते और जो शरीर को कष्ट देकर अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिये प्रयत्न कर हैं वे दु:ख के द्वारा फिर दु:ख ही को पाना चाहते हैं'।

(७–२१।२२

स्वर्ग में कामनाओं की पूर्ति होती है किन्तु वे तो कामनाओं को ही बन्ध का मूल मानते थे। शरीर को कष्ट देकर फिर उन्हीं कष्टदायिनी कामनाओं चाहना मानों दु:ख ही का वरण करना हुआ। उनका तर्क था कि यदि शरी पीड़ा ही धर्म है और सुख प्राप्त करना अधर्म है तो फिर धर्म से सुख की प्रा क्यों चाहते हो, फिर तो धर्म का फल अधर्म ही हुआ न ?

(४–२६

योगशास्त्र में कहा ही है कि आहारशुद्धि से सत्त्वशुद्धि हो जाती है। बुद्ध कहते हैं कि यदि ऐसा होता तो जंगल के पशु-पक्षी भी पुण्यवान् हो जाते

(७–२८

यदि केवल पानी में नहाने से शुद्धि हो जाती तो फिर मछलियों क मुक्ति हो जाती। यह तो केवल मन को संतोष कर लेना है। केवल स्नान कोई पवित्र नहीं होता (७–३०)। असल में गुण ही तीर्थ का सार है न पानी। पानी तो पानी ही है। उससे पापनिवृत्ति नहीं होती।

(७–३१

मतलब यह कि बाह्याचार को बहुत महत्त्व दिया गया था उसकी बुद्ध निंदा की। श्रीकृष्णजी ने द्रव्ययज्ञ की महत्ता कम कर ज्ञानयज्ञ को महत्त्व दिया था और इन्द्रयज्ञ को रोककर गोयज्ञ चलाया था। उसी परम्परा को आगे बढ़ाकर बुद्ध और महावीर ने हिंसक यज्ञों को रोका और साथ ही बाह्याचारों की भी निन्दा कर आगे के कबीर आदि सुधारकों का मार्ग प्रशस्त किया कबीर ने तो और भी कड़े शब्दों में इन सब की निन्दा की है :—

क्या है तेरे न्हाई धोई। आत्माराम न चीन्हा सोई॥

तथा—

क्या घट ऊपरि मंजन कीयें, जो मन मैल अपारा।